

बेशकीमती है इल्ली और फफूंद का गठजोड़

डॉ. अरविन्द गुप्ते

भारत के उत्तर-पूर्व में तिब्बत स्थित है। किसी समय में यह एक स्वतंत्र देश था, किंतु अब चीन का एक भाग है। तिब्बत की राजधानी ल्हासा के उत्तर-पूर्व में एक विशाल पठार है जो तिब्बत का पठार कहलाता है। इस पठार की समुद्र तल से ऊंचाई पांच हज़ार से लेकर सोलह हज़ार फीट तक है। लगभग दो लाख वर्ग किलोमीटर में फैला यह पठार चारों ओर से ऊंचे पहाड़ों से घिरा है। यहां का मौसम बहुत ठंडा होता है। ठंड के दिनों में यहां का तापमान -40° सेल्सियस तक पहुंच जाता है। वार्षिक वर्षा का औसत केवल 10 से 30 से.मी. है और यह वर्षा भी अधिकतर ओलावृष्टि के रूप में होती है।

चूंकि खेती करना संभव नहीं होता, यहां के अधिकांश निवासी खानाबदोश जीवन जीते हैं। ठंड के दिनों में वे अपने पालतू पशुओं (गाय के समान जंतु याक) और बकरियों को लेकर पहाड़ों की तलहटियों में आ जाते हैं और गर्मी का मौसम शुरू होते ही अपने मवेशियों को लेकर फिर ऊंचे पठारों की ओर चल पड़ते हैं जहां पर बर्फ पिघलने के साथ नई घास उगने लगती है। कृषि या कारखाने न होने के

यह है वह फफूंद जो यार्त्सा गन्बु के नाम से बिकती है



कारण इस इलाके में गरीबी व्यापक रूप से फैली है।

हर वर्ष मई के महीने में गर्मी का मौसम शुरू होते ही इस क्षेत्र में एक रोचक घटना घटती है। दूर-दूर तक फैले घास के मैदानों पर शाम के समय मंडराने वाले पतंगों की मादाएं घास पर अंडे देती हैं। जब अंडों से निकली इल्लियां घास को खाती हैं तब *कॉर्डिसेप्स साइनेन्सिस* नामक फफूंद के बीजांड (स्पोर) इन इल्लियों को संक्रमित कर देते हैं। ठंड का अगला मौसम आने से पहले इल्लियां ज़मीन में धंस जाती हैं ताकि वे अपना जीवनचक्र पूरा कर अगले गर्मी के मौसम में पतंगों के रूप में बाहर आ सकें। किंतु फफूंद से संक्रमित इल्लियां ज़मीन में ही मर जाती हैं और फफूंद उनके आंतरिक अंगों को अपना आहार बना कर उनके शरीरों को पूरी तरह खोखला कर देती है।

गर्मी का मौसम शुरू होते ही इल्ली के खोल में छेद करके फफूंद भूरे रंग के एक नन्हे पौधे के रूप में ज़मीन से बाहर आ जाती है किंतु खोल से जुड़ी रहती है। भूरे रंग की, पौधे के समान यह रचना केवल 5-7 से.मी. ही लंबी होती है और इसे वहां उगने वाले अन्य पौधों से अलग पहचानना मुश्किल होता है। अतः केवल पारखी नज़र वाले ही इन्हें पहचान पाते हैं। इल्ली से जुड़ी इस फफूंद को स्थानीय

भाषा में *यार्त्सा गुन्बु* कहते हैं। यह माना जाता है कि कैंसर से ले कर पीठ दर्द तक कई रोगों के लिए यह एक असरकारक दवा है। किंतु विशेष रूप से इसे कामोत्तेजक माना जाता है और इसी कारण इसकी बहुत अधिक मांग होती है।

यार्त्सा गुन्बु को ज़मीन से निकालने में काफी कौशल की आवश्यकता होती है। इस काम के लिए बच्चों को प्राथमिकता दी जाती है क्योंकि पैनी दृष्टि और छोटे कद के कारण वे पठार पर बहुतायत में उग रही घास-फूस के

बीच फफूंद को अधिक आसानी से पहचान लेते हैं। इसके लिए पठार पर स्थित स्कूलों में मई-जून में चार सप्ताह का अतिरिक्त अवकाश रखा जाता है। फफूंद को ज़मीन से निकालते समय यह सावधानी बरतनी होती है कि वह इल्ली के खोल से अलग न हो जाए वर्ना उसका कोई मूल्य नहीं रह जाता। इल्ली के खोल और उससे जुड़े हुए फफूंद को सुखा कर पूरा खाया जाता है।

फफूंद को ज़मीन से निकालने के लिए एक विशेष प्रकार की छोटी खुरपी की सहायता से मिट्टी को सावधानीपूर्वक हटाया जाता है। बाद में इस गड्ढे को ठीक से भर दिया जाता है ताकि पर्यावरण को हानि न पहुंचे।

चीन में केवल सम्पन्न लोग ही ऊंचे दामों पर *यात्सा गुन्बु* खरीद पाते थे। किंतु कम्युनिस्ट क्रांति के बाद सम्पन्न लोग देश छोड़ कर भाग गए और फफूंद के खरीददार कम हो गए। 1990 के दशक के बाद चीन की आर्थिक नीतियों में बदलाव के फलस्वरूप व्यक्तिगत आय बढ़ने लगी, *यात्सा गुन्बु* की मांग ने फिर जोर पकड़ा और गरीब तिब्बतियों के अच्छे दिन आ गए। तिब्बत के पठार पर एक वर्ष में इकट्ठा किए गए फफूंद का मूल्य 100-150 करोड़ डॉलर होता है। इस पर तिब्बतियों का लगभग एकाधिकार है क्योंकि हालांकि नेपाल व भूटान में भी *यात्सा गुन्बु* मिलता है किंतु उसकी गुणवत्ता तिब्बती फफूंद के बराबर नहीं होती। पठार के ग्रामीण क्षेत्रों में रहने वाले तिब्बतियों की आय का लगभग 40 प्रतिशत हिस्सा फफूंद से आता है।

यात्सा गुन्बु परम्परागत चीनी चिकित्सा पद्धति का भाग बन चुका है। कुछ लोग इसकी कामोत्तेजक क्षमता के बारे में शक ज़रूर ज़ाहिर करते हैं, किंतु अधिकांश चीनी मध्यम और उच्च आय वर्ग इसका दीवाना है। 100 इल्लियों (जिनमें फफूंद जुड़ा हो) का मूल्य लगभग छह लाख रुपए के बराबर होता है। चीन में अधिकारियों को रिश्त के बतौर *यात्सा गुन्बु* दिया जाना आम बात है।

यह फफूंद कई बार तनाव का कारण भी बनती है। फफूंद इकट्ठा करने में एक गांव के लोग अपने गांव के

लोगों से सहयोग करते हैं किंतु यदि पड़ोस के गांव के लोग उनके क्षेत्र में आ कर फफूंद बीनने लगें तो लड़ाई की नौबत आ जाती है।

तिब्बती लोग चीनी हान लोगों को बिलकुल पसंद नहीं करते। हान लोगों का फफूंद बीनने के लिए आना और भी अधिक हिंसा का कारण बन जाता है।

यात्सा गुन्बु के सामाजिक कुप्रभाव भी सामने आने लगे हैं। चूंकि तिब्बत के ही शहरों में नौकरियों में हान चीनियों को प्राथमिकता दी जाती है, तिब्बतियों में काफी बेरोज़गारी है। बेरोज़गार ग्रामीण तिब्बती फफूंद से प्राप्त आय को शराब और जुएँ में उड़ा देते हैं। एक अन्य दुष्प्रभाव यह देखा गया है कि फफूंद बीनने के लिए आने वाले बाहरी लोग उनके द्वारा किए गए गड्ढों को उतनी सावधानी से नहीं भरते जितना तिब्बती भरते हैं। इसका परिणाम पठार पर उगने वाली घास के विनाश में होता है। चूंकि यह पठार एशिया की तीन बड़ी नदियों (येलो रिवर, यांगत्सी और मेकांग) का जलग्रहण क्षेत्र है, इन नदियों में पानी का बहाव प्रभावित होता है।

चिंता की बात यह है कि *यात्सा गुन्बु* से उपजी सम्पन्नता का प्रभाव भारत और नेपाल जैसे पड़ोसी देशों पर भी पड़ा है। तिब्बत में बाघ और तेंदुए की खाल पहनना बड़प्पन का लक्षण माना जाता है। जैसे-जैसे तिब्बतियों में सम्पन्नता बढ़ने लगी, इन खालों की मांग भी बढ़ने लगी और भारत और नेपाल में बाघ-तेंदुओं की संख्या घटने लगी क्योंकि इन्हीं देशों से खालें तस्करी के माध्यम से चीन और तिब्बत में भेजी जाती हैं। 2006 में तिब्बतियों के धर्मगुरु दलाई लामा ने आदेश दिया कि जानवरों की खालें न पहनी जाएं। चूंकि दलाई लामा को तिब्बती देवतातुल्य मानते हैं, इसका तुरंत परिणाम हुआ और तिब्बतियों ने खालों को जलाना शुरू कर दिया। चीन की सरकार ने इसे रोकने का भरसक प्रयास किया किंतु दलाई लामा के आदेश के आगे सरकार की कुछ न चली। इसका अच्छा परिणाम यह हुआ कि भारत में बाघों की संख्या फिर से बढ़ने लगी। (*स्रोत फीचर्स*)